बिजली का संकट

एन. श्रीकुमार और शांतनु दीक्षित

जहां सरकारें व ऊर्जा क्षेत्र के अन्य किरदार बिजली के संकट से निपटने को लेकर सजग हैं, वहीं कई लोग इसे व्यापारिक लाभ कमाने का अवसर मान रहे हैं। दूसरी ओर, ग्रामीण बिजली सप्लाई उपेक्षित पड़ी है।

पिछले सितंबर से ही मीडिया में बिजली संकट की खबरें बढ़ते क्रम में आ रही हैं। पिछले वर्ष सितंबर में बिजली की कमी 10 प्रतिशत से बढ़कर 30 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। देश भर में औद्यागिक क्षेत्र में प्रतिदिन 8 से 14 घंटे तक की बिजली कटौती की गई। इसके अलावा, सप्ताह में 2-3 दिन बिजली अवकाश भी रखा गया। कोलकाता, हैदराबाद, बैंगलुरु जैसी प्रांतीय राजधानियों में 2-4 घंटे की कटौती की गई। यहां तक कि दिल्ली को भी नहीं बख्शा गया।

यह रिपोर्ट किया गया था कि देश के लगभग आधे ताप बिजली घरों में चंद दिनों का ही कोयले का स्टॉक बचा है जबकि आदर्श स्थिति में उनके पास कम से कम 3-4 सप्ताह के लिए कोयला स्टॉक होना चाहिए। बिजली की कमी के बावजूद ऊर्जा व कोयला मंत्रियों ने ऐसे आश्वासन भरे वक्तव्य जारी किए थे कि दीवाली का त्यौहार भरपूर रोशनी के साथ मनाया जाएगा।

अब कमी की स्थिति थोड़ी बेहतर हुई है मगर आशंका है कि आने वाली गर्मियों में हालात फिर से बिगड़ जाएंगे। मीडिया रिपोर्टों से उन लोगों की प्राथमिकताएं उजागर होती हैं जो ऊर्जा क्षेत्र का संचालन करते हैं। पी. साईनाथ का मुहावरा उधार लें, तो लगता है कि सचमुच ऐसे लोग हैं जो एक मुकम्मल अभाव से प्रेम करते हैं।

बिजली कटौती कोई नई चीज़ नहीं है। अलबत्ता, जिस चीज़ ने ध्यान आकर्षित किया है, वह है उद्योगों व शहरों पर उनका असर। कोयला उत्पादन करने वाले पूर्वी भारत में भारी बारिश को संकट का एक कारण बताया गया है। इसके अलावा, कोल इण्डिया में तीन दिन की हड़ताल, सिंगरेनी कोयला खदान में महीने भर की हड़ताल, कुछ बिजली घरों द्वारा कोल इण्डिया को भुगतान न किया जाना, कोयला खदानों के निजीकरण से उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि न हो पाना, आयातित कोयले की कीमतों में वृद्धि तथा ताप बिजली घरों का सालाना रख-रखाव वगैरह कारण भी गिनाए गए हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली सप्लाई औसतन छः घंटे रहती है और ग्रामीण लोग जानते हैं कि बिजली कटौती के घंटे कोई खबर नहीं बनती। वास्तव में खबर तो यह बनती है कि गांवों में कितने घंटे बिजली चालू रही। ग्रामीण बिजली सप्लाई को आम तौर पर कृषि के लिए बिजली सप्लाई से जोड़ दिया जाता है। कृषि के लिए बिजली सप्लाई को रात या दोपहर के समय 6-8 घंटे चालू रखा जाता है जब शहरों को बिजली की ज़रूरत नहीं होती। आंकड़े बताते हैं कि गांवों में हर पांच में से दो घरों में बिजली कनेक्शन ही नहीं है।

इन घरों को रोशनी न मिलने का एकमात्र कारण सप्लाई में कमी नहीं है। हालांकि पिछले एक दशक में बिजली उत्पादन में 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, मगर ग्रामीण परिवारों तक बिजली की पहुंच मात्र 10 प्रतिशत बढ़ी है।

दिलचस्प बात यह है कि बिजली की यह कमी व्यापार के अवसर पैदा करती है। खास तौर से ऐसी चीज़ों

का व्यापार जिनकी वास्तव में ज़रूरत ही नहीं होनी चाहिए - इंवर्टर्स, युपीएस इकाइयां, डीज़ल जनरेटर्स। सरकार डीज़ल पर सबसिडी देती है ताकि सार्वजनिक यातायात व माल ढुलाई का काम किफायती दरों पर हो सके मगर इस डीज़ल का उपयोग मॉल्स को जगमग करने, एयर कंडीशनर चलाने और मोबाइल टॉवर्स में होता है।

इसके अलावा मुक्त बाज़ार के हिमायती दावा करते हैं कि सारी समस्या की जड़ तो यह है कि सरकार इस बाज़ार पर नियंत्रण करती है। बिजली क्षेत्र में निजी किरदारों की भूमिका बढ़ती जा रही है। वर्तमान अभाव के दौर में, बाज़ार में बिजली के मूल्य 8-11 रुपए प्रति युनिट तक पहुंच गए, जबकि औसत मूल्य 3-4 रुपए प्रति युनिट है। व्यापारिक बिजली संयंत्र, जो बाज़ार में बिजली बेचते हैं, को यह अभाव अत्यंत सुहावना लगता है क्योंकि यह उन्हें मनमाना मुनाफा कमाने का अवसर देता है। खड़ी फसलों को बचाने या प्रमुख उद्योगों को चलाने के लिए बिजली की संकटकालीन खरीद के चलते बिजली के दाम दुगने हो गए हैं। कुछ लोग तत्काल फायदा उठाने के लिए बिजली घरों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने का जुगाड़ जमा रहे हैं, जैसे बंद कमरों में अनुबंध करना या पहले हो चुके अनुबंधों में संशोधन करना।

इससे 1990 के दशक की यादें ताज़ा हो जाती हैं, जब निजी बिजली निर्माताओं को यह कहकर बढ़ावा दिया गया था कि "महंगी से महंगी बिजली भी बिजली न होने से तो बेहतर है।" कहने का आशय यह था कि बिजली उपलब्ध न होने का विकल्प बिजली उत्पादन के किसी भी विकल्प से महंगा साबित होगा; लिहाज़ा बिजली उत्पादन क्षमता में किसी भी कीमत पर इज़ाफा किया जाना चाहिए।

यहां दो मुद्दे महत्त्वपूर्ण हैं। पहला, तुरत-फुरत समाधान लागू करने में सावधानी बरतनी होगी। क्योंकि ऐसे तुरत-फुरत समाधानों के परिणाम ऐसे हो सकते हैं जिन्हें पलटना शायद संभव न हो और ये अपने आप में ज़्यादा बड़ी समस्याएं बन जाएं। हमारा देश एक गरीब देश है, जो महंगी गलतियां वहन नहीं कर सकता। एनरॉन की घोर असफलता इसकी एक मिसाल है। आम लोग आज भी इसका खामियाज़ा भुगत रहे हैं क्योंकि एनरॉन की बिजली निहायत महंगी साबित हुई थी।

दूसरा मुद्दा गलत प्राथमिकताओं का है। ऊर्जा क्षेत्र के नियंताओं की प्राथमिकताओं में कहीं कुछ गड़बड़ी है और वे ग्रामीण बिजली सप्लाई की लगातार उपेक्षा करते रहे हैं। मसलन, एक वर्ष पूर्व प्रयास समूह ने यह सुझाव दिया था कि 2 अतिविशाल बिजली परियोजनाओं को आरक्षित कर दिया जाए ताकि देश के 100 सबसे पिछड़े ज़िलों में बिजली कटौती को समाप्त किया जा सके, इन ज़िलों में शत-प्रतिशत घरों को बिजली देने का सक्रिय कार्यक्रम उठाया जाए, और लोड शेडिंग के मसले पर जन सुनवाइयां आयोजित की जाएं। इन विचारों को क्रियान्वित नहीं किया गया है।

वर्तमान संकट की जड़ें बिजली व कोयला क्षेत्र में प्रशासन के संकट में हैं। वैसे तो इन समस्याओं का कोई तुरत-फुरत समाधान नहीं हो सकता मगर कुछ उपाय किए जा सकते हैं जिनके दूरगामी परिणाम होंगे। इनमें दीर्घावधि नियोजन, ऊर्जा-क्षति को कम करना, उपभोक्ताओं के स्तर पर कार्यक्षमता में वृद्धि, ग्रामीण पहुंच कार्यक्रम (जैसे राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना) को सुदृढ़ करना, और नियामक प्रक्रियाओं की मदद से बिजली व कोयला क्षेत्र में प्रशासन को बेहतर बनाना शामिल हैं। खास तौर से एक कोयला नियामक संस्था गठित करने की ज़रूरत है। बिजली नियामक आयोगों को चाहिए कि वे जन सुनवाइयां आयोजित करें ताकि संकट के कारण खोजे जा सकें और सुधार के उपायों की योजना बनाई जा सके।

प्रशासन में बढ़ती खामियों के इस काल में, ये अनिवार्य कदम हैं जो सरकार व नियामक आयोगों को उठाना चाहिए। यदि वे इन समाधानों को लागू करने में असफल रहते हैं, तो माना जाएगा कि वे समाधान के नहीं बल्कि समस्या के हिस्से हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***